मालव

बिष सैमार पवनासन हारे।
पावक सम धनि मान तुषारे॥
नीरहिँ काजर बहि महि परइ।
ससिँ बनि मसि खञ्जन जनि बसइ॥
ए पहु कह दहुँ कओन उपाइ।
अपरुब वेदन की करति साइ॥
त्रिपुरासुर रिपु रिपु सर सहइ।
अवधि आसेँ केवल जिव बहइ॥
हृदय सिनेह दहन सन दहइ।
कहहि न पारिअ जत दुख सहइ॥
सिद्धि नरसिंह भन सुनि सखि बानी।
सिनेह राय प्रभु पर दुख जानी॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१९

[अर्थ—कमल, सेमार ओ साप (आहि तुषार सँ) हारि गेल अछि, (ताहि) तुषार कें धन्या (नायिका) अग्नि सदृश (दाहक) बुझैत अछि। नोर (बहला) सँ (आँखिक) काजर बहि कऽ (घोअरि कऽ) पृथ्वी पर खसैत अछि, जेना (मुख रूपी) चन्द्रमा से धाख कए (नयन रूपी) खञ्जन मौलिक वमन कऽ रहल हो। हे प्रिय ! कहि दिअ (जे एकर) की उपाय ? (एहि विरह जन्य) अपूर्व वेदना सँ ओ (नायिका) की करत ? (ओ) कामदेवक बाण (क प्रहार) कें सहि रहल अछि। केवल अवधिक आश ने जीवन (धारा) प्रवाहित छैक (अर्थात ओ केवल अहाँक अएबाक निर्धारित अवधिक आश लगौने प्राण धारण कैने अछि।) हृदयक (तरल) स्नेह अग्नि सदृश प्रज्वलित भऽ रहल छैक। (ओ) कतेक दुख भोगि रहल अछि से कहि नहि सकैत छी। सखीक वचन कें सुनि सिंह नरसिंह कहैत छथि—प्रभु (श्री कृष्ण) दोसराक दुख कें जानि स्नेह रखैत छथि।]

२

कांड़ार

रहए न धैरज हेरि मुख पङ्कज लोभी लोचन भृङ्गे।
तुअ कुचयुग अति गढ़ल परसमनि कनक धराधर शृङ्गे॥
कामिनि मान न करहु सब ठामा।
लाए मदन सर जिव एहि अवसर आवे विवेक तुअ रामा॥
आरति सञ्चर मनमथ कुञ्जर भेल मगन गुन पङ्के।
हृदय निकारण तुअ अति दारुन जुग भरि रहल कलङ्के॥
उचित न मानल मोर अकरम बल जत हम कर परकारे।
पिय विनय रतने देह मान धन भन सिंहनरसिंह सारे॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या-२०

[अर्थ— अहाँक मुखकमल के निहारि नयनरूपी लोलुप भ्रमरकेँ धैर्य नहि रहि जाइछ। अहाँक दुनू उरोज लगैछ जेना सोनक पहाड़क शिखर पर स्पर्शमणिक रचना रहय। हे कामिनी ! सब ठाम मान जुनि करू। कामदेवक असंख्य बाण सँ (आहत हमर) प्राण एहू समय मे जीबि रहल अछि। (तइओ त) अहाँकेँ विवेक हो। बारी भेल संचरण करैत कामदेव रूपी गज अहाँक गुणक पाँक मे निमग्न भऽ गेल। (ओकर उद्धार कहाँ धरि करितिऐक जे) अहाँक हृदय अत्यन्त कठोर बनल अछि। एहि सँ युग-युगान्तर धरिक लेल कलंक रहि जैत। हम अनेक चेष्टा कैल हमर कर्म दोषेँ अहाँ तकरा उचित नहि मानल। प्रियतमक विनय (रूपी) रत्नकेर (विनिमयमे) अपन मान रूपी धन अर्पित करू। सिद्धि नरसिंह एहि सार वस्तु कें कहैत छथि।]

आसावरी

३

सजल नलिनि दल सेजे।
देह दह हुतवह तेजे॥
तरब कओन परकारेँ।
बिरह पयोनिधि पारे॥
सौध सहस सखि बासे।
जनि सुन वन भेल बासे॥
सुमरि सुमरि तसु रङ्गे।
अनुखन जनि हरि सङ्गे॥
तइअओ हनय पँचबाने।
बिनु हेतुँ हमर पराने॥
उतरत सबे दुख भारे।
भन सिद्धि नरसिंह सारे॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—२१।

[अर्थ—सजल कमल पत्रक शय्या ! (मुदा) देह (जेना) अग्निक ज्वाला सँ दहकैत अछि । विरह समुद्रक संतरण कोन प्रकारेँ करब ? महल मे सहस्रो सखी लग मे छथि तथापि (एकटा प्रियतमक अभाव मे) जेना शून्य वनगे बसैत होइ । हुनक केलि-क्रीड़ा केँ स्मरण कए लगैछ जेना हरि (श्री कृष्ण) निरन्तर संगे होथि । तथापि पंच-बाण अपन (अपन पाँचो बाण सँ) अकारण हमर प्राण केँ बेधैत छथि । सिद्धि नरसिंह (नायिका सँ) सार (वस्तु) कहैत छथि जे समस्त दुखक भार उतरि जैत (अर्थात् हरिक समागम भेने कोनो कष्ट नहि रहत ।]

विभास

४

पन्नग भूषण मलय पवन अधिक होअ उदासे ।
मज्जन सेवन्न मानसे केवल चाँदन चाँद हुतासे ॥
साजनि पुरुष लज्जित पावेँ ।
ताम्बोल मानिक विधि अकामिक हरल दए संतापे ।
भान भवन जँसन कानन विषय विष समाने ।
मदन परम निर्दय हृदय मरम मारल बाने ॥
करहु सुमन सङ्गम जहन जँ मोर रह पराने ।
सुमुखि सुकृते मिल पकट बेरा सिद्धि नरसिंह भाने ॥

—भा० गी० स०, पद संख्या २२

[अर्थ पन्नगक भूषण बला (अर्थात सर्प के भूषण सदृश धारण कैनिहार) मलय पर्वत पर सँ चलल बसात सँ कष्टे होइछ। सेमार केवल सरोवरे मे सजल अछि, (एतय त।) चानन ओ चन्द्रमा (सेहो जेना) आगि हो। हे साजनि ! पूर्व संचित पापक कारणें, प्राप्त कैल (प्रियतम रूपी) माणिक्य कें अकस्मात हरण कय विधाता संताप दऽ गेलाह। भवन जेना कानन रहय तेना मानल आर विषय कें विषवत्। कामदेव अत्यन्त कठोर हृदय छथि, मर्म पर बाणक आघात कैलन्हि। (हे साजनि !) सुजन (श्री कृष्ण) क संग समागमक यत्न करह जाहि सँ हमर प्राण रहय। सिद्धि नरसिंह कहैत छथि . सुकर्म सँ सुमुखी प्रकट ओ व्यक्त भए भेटैत छथि ।]

५

कओने कलावति रे रे दृढ़ गुने।
बाँधल हमर पुरुष पुने॥
निमिष अंतर जहि रे रे साजनि।
मोरें मने सहस जोजन जनि॥
हृदय धरब आवे रे रे कओने परि।
कतहु न देखिअ निठुर हरि॥
नयन गरए जल रे रे पथ हेरि।
गुन गन सुमरि सतओ बेरि॥
हनए मनोभव रे रे पुनु पुनु।
अनुखन विरह विकल तनु॥
धेरज धाओब रे रे हितजन।
तुअ गुने सिद्धि नरसिंह भन॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या --२३

[अर्थ—कोनो कलावती अपन हृदृ बन्धन मे हमर पूर्वक पुष्प कें बान्हि लेलक ? हे साजनि ! निमिष मात्रक अन्तर हमरा मनमे जेना सहस्र योजनवत् भऽ आइल छल। (सेह आइ जखन वस्तुतः दूर चल गेल छथि त) आब हम कोन तरहें धैर्य धारण करब, जखन कि निष्ठुर हरि (श्री कृष्ण) कें कतहु नहि देखैत छिऐन्ह। बाट तकैत, आँखि सँ नोर बहि रहल अछि। सैकड़ो बेर गुण सभक सुमिरन करैत छी। कामदेव बेर-बेर बेधि रहल छथि। शरीर प्रतिक्षण विरह सं विकल अछि। धैर्य रखने, अहाँ अपनहि गुण सँ, अपन हितैषी (श्री कृष्ण) कें प्राप्त करब, सिद्ध नरसिंह (एहि विषय कें) कहैत छथि।]

६

बिनु भय मन धरि कयल सरन हरि
आबे तुअ बुझल उदासे।
जे आबे जिव तहु अधिक पेयसि रहु
तसु सङ्गे करहु बिलासे ॥

माधव कि कहब हमें तोंहु रामे।
जे जत अछल भल सबे विपरित भेल
हमर करम परिनामे।
प्रथम जानल हमे परम मुगुध मने
हम सन तुअ नहि देहा।
दखन अमित्र बम हृदय कुलिस गग
भलें विधिं बुझल सिनेहा ॥
परिमल विस लेखि मधुमालति देखि
मधुकर की करत पाने।
दुसह वेदन तेज हरिपद जुग भज
नृप सिंघि नरसिंह भाने ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या-२४।

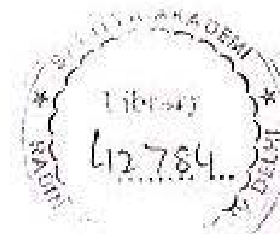
[अर्थ—मन मे कोनो प्रकारक भय नहि राखि, हे हरि ! हम अहाँक शरणापन्न भेलहुँ। (मुदा) आब बुझल जे अहाँ हमरा प्रति विरक्त छी। जे आब प्राणहु सँ बढ़ि (अहाँक) प्रेयसी अछि तकरहि सङ्ग विलास करैत छी। हे माधव ! हम (जे) रमणी (राधा), अहाँके की कहब ? जे अतेक नीक छल से सभटा हमर कर्म-दोष सँ प्रतिकूल भऽ गेल। अत्यन्त विमूढ़ हम, पहिने बूझल जे हमरा सदृश (प्रिय) अहाँकें दोसर (नायिकाक) शरीर नहि अछि। मुदा आब नीक जेकाँ अहाँक स्नेह कें बुझि लेल अछि, जे (अहाँक) वचन मे त अमृतक उद्गार अछि मुदा हृदय वज्र सदृश (कठोर) अछि। परिमल कें विषवत् बूझि मधुमालती कें देखि कऽ मधुकर की पान करत ? सिद्धि नरसिंह (नायिका सँ) कहैत छथि, (एहि विरह जन्य) दुस्सह वेदना कें त्यागि हरि (श्री कृष्ण) क पदद्वयक भजन करू।]

भूपाली

७

अएलाहुँ गेलाहुँ ई भेलि साति।
कुपहु सङ्गे गमाउलि राति॥
भमर बूझ कमलिनि कला।
कीट कँपचय कुसुम दला॥
न कच आकुल न कुचँ रेह।
नहि पराभवे भामर देह॥
जौवन रूप कला सबँ आगरि।
नाह गमार कि करति नागरि।
(श्रीसिद्धि नरसिंहमल्लदेवानाम्।)

—भा० गी० सं०, पद संख्या—२६।



[अथ आवागमन कैल तकर ई दण्ड भेटल। गमार पहुक संगे राति बिताओलि। भ्रमर ने कमलिनीक सौन्दर्य कैं बुझैछ! कीड़ा त कुसुमक दल कैं कपचिते अछि। ने त केश बिखरल, ने नख-क्षते भेल आ ने पराभव सँ शरीरे झामर भेल। यौवन, सौन्दर्य एवं कला, सभक आगरि नायिका! (मुदा जखन) नाथे गमार हो तऽ सुरसिका की करति?]

विशेष—एहि पद मे भणिताक पंक्ति नहि अछि, मुदा पदक नीचा मे 'श्रीसिद्धिनरसिंहमल्लदेवानाम्' लिखि एकर स्पष्टतः निर्देश अछि जे ई पद 'सिद्धि नरसिंहमल्ल'क छन्हि।

८

मास पलेँ उगए कलानिधि उगए अपन कए साज।
तुअ मुख सम नहि पावए तेँ खिन मने गुनि लाज॥
गिम रूप रमनि कहब कत कम्बु कएल जल झाँप।
पवन चलित नव पङ्कज कुच-कोरक डरेँ काँप॥
सामर चामर निन्दए सुन्दर चिकुर कलाप।
भौंह मनोहर कि कहब कामे तेजल निय चाप॥
मन धाओल पाओल नहि आसा न तेजए लोभ।
एसनि रमनि नृपसिंह कह हरिक निकट पए सोभ॥
—भा० गी० सं०, पद संख्या—५०।

[अर्थ—मास मे, पक्ष मे, चन्द्रमा अपन सभ सज्जा (कला)क संग (कामिनीक मुखक समता पयबाक प्रयास मे) उगैत अछि किन्तु अहाँक मुखक समता नहि पाबि (दोसर पक्ष मे) लजा कए खिन्न-मन भऽ जाइछ। हे रमणी! (अहाँक) दोवाक रूपक (विषय मे) कतेक कहब? शंख लज्जित भए जल मे निमग्न भऽ गेल। (तहिना) पवन-चालित नव-कमल (अहाँक) कुच-कलीक भय सँ काँपि रहल अछि। (अहाँक) सुन्दर केश-राशि कारी चामरक निन्दा करैत अछि। (अहाँक) मनोहर भउँहक (विषय मे) की कहब? (बुझि पड़ैछ जे ओकरहि कारणेँ) कामदेव अपन धनुष केँ छोड़ि देलन्हि। मन (अहाँक पाछाँ) दौड़ल, मुदा पकड़ि नहि सकल। तथापि (अहाँकेँ प्राप्त करबाक) लोभ जे अछि से आशा केँ नहि छोड़ि रहल अछि। नृपसिंह कहैत छथि जे एहि प्रकारक रमणी हरि (श्री कृष्ण)क लग मे रहला सँ शोभायमान होइत छथि।]

[विशेष—ई पद 'रागतरंगिणी' मे (पृष्ठ—५३-५४)

निम्नलिखित पाठान्तर ओ पंक्ति-व्यत्ययक संग उपलब्ध होइछ—

मासि पखेँ उगए कलानिधि लेए सकल निअ साज।
तुअ मुख सम नहि देखिअ तेँ खिन मनेँ गुनि लाज॥
कहुबहुँ कओन पुरुष बनि आहि कर रह अनुराग।
कै अछ एहि महिमल जे अरजल एहेन भाग॥
सामर चामर निन्दए कोमल केस कलाप।
भौंह मनोहर कि कहब कामेँ तेजल सर चाप॥
पवन चलित नव पल्लव कुच कोरक तरेँ काप।
धके धाओल नहि पाओल आशा लुबुधल लोभ।
ओहनि रमनि नृपसिंह कह हरिहि निकट पए सोभ॥

९

मालव

जाहि देसँ पिक पञ्चम नहि गावए कुसुमित नहि कानने।
छव ऋतु मास भेद नहि जानए सहजहि अवल मदने।
सखि हे सेहे देश गेला पिआ मोरा।
रसमति बानी जतहि न जानए सुनिअ प्रेम बड़ थोरा।
कहलिओ कहिनी जतए न बुझय इङ्गित कि करत काजे।
कओने परि ततए रतल मोर बालभु गुनि भए निगुन समाजे॥
की अपना कें लघु कए मानब कि कहब तन्हिक बड़ाइ।
की हमे गरुबि गमारि सहज तह की रति विरत कन्हाइ॥
सिंह नृपति कह धैरज कए रह हरिक चरण कर सेवा।
पड़ल अनाइति ते छथि अनतए बालभु दोस न देवा॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१२१।

[अर्थ—जाहि देश मे कोइली पंचम (स्वर मे) गान नहि करैछ, (जतय) कानन मे फूल नहि फुलाइछ, (जतय) छवो ऋतु ओ विभिन्न मासक भेद नहि जनैत अछि (अर्थात् सालो भरि एकहि रंग बुझि पड़ैछ) ओर (जतय) कामदेव स्वभावतः निर्बल छथि। हे सखी! हमर प्रिय ताही देश कऽ गेला जतय केओ सरस वाणी नहि जनैछ। सुनैत छी, (जतय) प्रेम बड़ थोड़ अछि। जतय कहलो बात केओ नहि बुझैछ (फेर) संकेत कोन काज करत? हमर बल्लभ ओतय कोन प्रकारें आसक्त भऽ गेलाह अछि? गुणी भऽ कऽ ओ निर्गुणक समाज मे (कोना छथि)? की हम अपना कें हीन कऽ कऽ बुझू अथवा एकरा हुनक बड़प्पन कहू? की हम स्वभावतः बड़ गमारिन छी? वा कृष्णे रति-विरत भऽ गेलाह अछि? सिंह नृपति कहैत छथि—धैर्यक संग रहि हरिक चरणक सेवा करू। ओ पराधीन छथि तेँ अन्यत्र छथि एहि लेल बल्लभ कें दोष नहि दिऔन्ह।]

विशेष—प्रस्तुत पद निम्नलिखित पाठभेदक संग नेपाल पदावली' (द्रष्टव्य-राष्ट्रभाषा परिषद् पटना द्वारा प्रकाशित, विद्यापति पदावली, प्रथम भाग, पृष्ठ-२६९-२७०, पद संख्या-२१२) मे सेहो पाओल जाइछ—

जाहि देस पिक मधुकर नहि गुजर कुसुमित नहि कानने।
छव ऋतु मास भेद नहि जानए सहजहि अबला मदने॥ ध्रु०॥
सखि हे से देस पिआ गेल मोरा।
रसमति वानी जतय न जानिअ सुनिअ पेम बड़ थोरा॥
कलिओ कठिनी जतए न बूझए की करति अछिज काजे।
कओन परि तताए रतन अछु वालमु नि (र) भय निगुण समाजे।
हमे अपना के थिक कए मानल कि कहब तन्हिकि बड़ाइ।
कि हमे गुरुवि गमारि (नि) सबतह कि रति विरत कन्हाइ॥
—भनइ विद्यापतीत्यादि॥

—एहि पद मे भणिताक पंक्तिक अभाव अछि मुदा 'भनइ विद्यापतीइत्यादि'क संकेत द्वारा ई स्पष्ट होइछ जे ई विद्यापतिक रचना थिकि। एहि पदक आकर स्रोत 'नेपाल-पदावली' कें अकृत्रिम पद संग्रह मानि एहि मे प्राप्त विद्यापतिक पद कें विशुद्ध मानल जाइत अछि। मुदा प्रस्तुत पद कें उपर्युक्त 'भाषा-गीत संग्रह' मे 'सिंह नृपति'क भणिता सें पबैत छी। भाषा-गीत-सग्रहोक प्राप्ति स्रोत नेपाले थीक। तें एकरहु अकृत्रिमता पर अविश्वास नहि कैल जा सकैछ। एहि स्थिति मे, एहि दुनू संग्रहक पद मे ककरा प्रामाणिक मानल जाय? विद्यापति ओ सिंह नृपति मे एकर वास्तविक रचयिता के छथि? सभ सं विचारणीय विषय त ई जे नेपाल पदावलीक अकृत्रिमता ओ विशुद्धता कतेक दूर धरि अक्षुण्ण रहैछ?

१०

दुइ तनु एक जिअ
से पिआ निठुर हिअ
एकहि नगर परदेसिआ। ए गे माइ हे।
के आन कओने कहु
ते हसि रहल पहु
आन दिन सनि न बिहुँसिआ। ए गे माइ हे।
सून दसओ दिसा
कैसे कए खेउबि निसा
आज विरत मोर रसिआ। ए गे माइ हे।
सिंह नृपति कहै
धैरज कए रह
हरि मने तोहहि पेआसिआ। ए गे माइ हे।
—भा० गी० सं०, पद संख्या - १२२

[अर्थ—दू शरीर आ' एक प्राण। (मुदा) से प्रिय (आइ) कठोर-हृदय भऽ गेल छथि। एकहि नगर मे परदेशी (बनल) छथि।

के जनैत अछि! के कहत? जे एहि (कारण) सँ प्रियतम रुसि रहला अछि। आन दिन जकाँ प्रसन्न नहि छथि।

दशो दिशा शून्य अछि, कोना कऽ राति बितएब? आइ हमर रसिक विरक्त छथि।

सिंह नृपति कहैत छथि, धैर्य राखु, हरिक मन मे अहीं प्रेयसी थिकअन्हि।]

११

राजविजय

हे मधइया

एँ वैरि जेठवा देहे नीकेँ।
पुनु पुनु आओत पीके॥
दधि दुध हमर पसारे।
दान लोहए अधिकारे॥
देओ मए मोतम हारे।
तैअओ न धरह कँधहारे॥
पहुँ मोर चिर परवासे।
बिसरल मदन तरासे॥
सिंह नृपति कह सारे।
भज धनि नन्दकुमारे॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१२३।

[अर्थ—हे माधव ! एहि बेर नीक जेकाँ (फिरि कऽ) जाय दिअ । फेर-फेर (दूध-दही) बेचबाक लेल आएब । दही दूधेक हमर व्यापार अछि आ' दान (लेब) अहाँक अधिकारे अछि । हम मोतीक हार देत छी, मुदा तइयो अहाँ नाव (खेबि कऽ पार करबाकलेल) कण्धारि नहि धारण करैत छी । हमर प्रियतम चिर प्रवासी छथि, कामदेवक कष्ट कें (अर्थात् हमरा कामदेव कतेक कष्ट दैत छथि) बिसरि गेल छथि । 'सिंह नृपति' सार वस्तु कें कहैत छथि, हे धनि ! नन्दकुमार श्री कृष्णक भजन करु ।]

१२

असावरी

बरु लेहे कन्हाई करहु पार ।
लह लाथ मुदरिआ कोटिहार ॥
जलद जाल दिग मग अँधार रे ।
आज ओर मोरा दधि पसार ॥
विषम जमुना नरि कुलँगि घाट रे ।
साँझ परति वन माँझ बाट ॥
सिंह नृपति कह सुन सयानि रे ।
सबे परिहरि भज सारँगपानि ॥

भा० गी० सं०, पद संख्या—१२४

[अर्थ -हे कन्हैया। अनहि लाखो मुद्रिका ओ करोड़ो हार लिअ (मुद्रा ; हमरा (नदी) पार कऽ दिअ। सघन मेघ सँ दिशा ओ बाट अन्धकारयुक्त अछि। आइ हमर दहीक वैभव सेहो समाप्त भऽ गेल। भयंकर यमुना नदी आ' तकर ई कुलग घाट। साँझ पड़ि जैत आ' बन दऽ कऽ बाट छैक। सिंह नृपति कहैत छथि, हे सयानि ! सुनू, सभ कें छोड़ि सारंगपाणि (श्री कृष्ण) क भजन करू।]

१२

नट

कैसे कए वेसब एहि देश।
एहि ऋतु पिया परदेश॥
सगुण करैते दिन गेल।
दिवस बरिस सम भेल॥
सपने आएल चलि गेल।
दिठि भरि देखिअ न भेल॥
रयणि भेल मोरि काल।
सुमरि सुमरि हिय साल॥
कबि लाइ लबल सिनेह।
जीवहि परल संदेह॥
नृपति सिंह एह भान।
बिरहिनि वेदन जान॥

—राग भजन संग्रह, पद संख्या—४१

[अर्थ—कोना कऽ एहि देश मे रहब ? (जखन कि) एहि ऋतु मे पिया परदेश मे छथि। सगुण उचारैत दिन बीतिगेल । (एक-एक) दिन, वर्ष सदृश भऽ गेल। सपना मे (ओ) अएलाह धाए चल गेलाह। भरि आँखि देखियो ने भेल। राति हमरा लेल काल भऽ गेल। मन पाङि-पाङि हृदय कें पीड़ा होइत अछि, । ई नव स्नेह कोन काजक ? (जाहि सं) प्राणो सन्देह मे पड़ि गेल। नृपति सिंह ई कहैत छथि, (ओ) विरहिणीक वेदना कें बुझैत छथि।

